आज का युग तनाव, चिन्ता, क्रोध और परेशानियों का युग है। धन होने के बावजूद भी, मानव सुखी और प्रसन्न नहीं है। क्यों? खाना, पीना, सोना, तो पशु भी करते हैं। जो मानव केवल यही कर रहे हैं क्या वो पशु से बेहतर हैं? आवश्यकता है स्वयं को देखने की, समझने की। और यदि सुख चाहिए तो अपने अन्दर के पशुत्व से ऊपर उठने की।

ज्ञानदर्शन योगाश्रम, सड़क–9, सेक्टर–10,
भिलाई (छ.ग.) में आयोजित शरदीय नवरात्रि के शुभ
मुहूर्त में समर्पित (सितम्बर–अक्टूबर 2008)

अनन्त आनन्द का स्रोत तो हमारे अन्दर ही है। क्या हम जानते हैं ? यदि जानते तो यूँ दर–दर न भटकते उन विषय भोगों में, जो हमें तनाव, क्रोध और चिन्ताओं का उपहार नित प्रतिदिन दे रहे हैं। आज आवश्यकता है कि हम स्वयं से पूछें "कि मैं कौन हूँ ? क्या मैं केवल शरीर हूँ ?" यदि व्यक्ति केवल यही दो प्रश्न निरन्तर करता है तो वह स्वयं ही अपने स्वरूप को जान सकता है, पहचान सकता है।

योग के द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर के ईश्वर को जान सकता है, पहचान सकता है। जब व्यक्ति अपने अन्दर के ईश्वरत्व की एक झलक देख पाता है तो उसके जीवन की धारा ही बदल जाती है। अपने अन्दर निहित सामर्थ्य को जानना, पहचानना और उसका विकास करते हुए अपना व्यक्तित्व सजाना, सँवारना ही योग का एक मात्र उद्देश्य है।

सहकारी मुद्रणालय एवं प्रकाशन संस्थान मर्यादित
सेक्टर 10, भिलाई से मुद्रित।

मेरी कहानी
मेरी जबानी
एक विवेचन

परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद
के चरणों में
सादर समर्पित

प्रीति अग्रवाल

विषय सूची

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
1.	मेरी कहानी प्रभु की रवानी	01
2.	मेरी कहानी मेरी जबानी	05
3.	अपनी माँ के पूजनीय चरणों में – एक श्रद्धाजंलि	53
4.	मेरे पिता– एक स्मरणीय व्यक्तित्व	58
5.	संपूर्ण नारी जाति के लिए मेरा सन्देश	65
6.	मेरा सपना	68

प्रस्तावना

आसन, प्राणायाम करते हुए यदि व्यक्ति यम और नियमों का पालन करता है तो ईश्वरीय ऊर्जा का अनुभव सहज ही कर पाता है। योग व्यक्ति के अनन्त सुख और शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने की एक सरल विद्या है। तनाव, चिन्ता का दामन तो स्वतः ही कहीं पीछे छूट जाता है। सत्य, अहिंसा, सन्तोष के द्वारा व्यक्ति सहज ही दूसरों के दिलों पर राज्य करते हुए यश और धन का स्वामी बन जाता है। तो आओ योग को अपने जीवन का अंग बनाएँ और अनन्त सुख और शान्ति की दिव्य संपदा को ग्रहण करें जिस पर हमारा पैतृक अधिकार है क्योंकि हम उसी ईश्वर की सन्तान हैं।

इस पुस्तिका को लिखने का एकमात्र यही उद्देश्य है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करते हुए अनन्त सुख और शान्ति का स्वामी बन सके।

मेरी कहानी – प्रभु की रवानी

मेरी कहानी कही जाती लोगों की जबानी।
कुछ दर्द से, कुछ हँसी से, और कुछ मज़ाक से।।
रह जाती मैं बन के पलंग की जीनत।
सब हाथ पाँव दुखते, न हिलते, न डुलते।।
पानी की इक बूंद के लिए रहती तरसती।
खाने के इक कौर के लिए होती मोहताज नौकरों पर।।
गठिया के रोग में तिल–तिल करके ही दिन रात सौ बार मरती और जीती।
पीड़ा के अतिरेक में पल पल दिन रात ही रोती रहती।।
अपने उन गहन पीड़ा के क्षणों में कभी विषाद और कभी निराशा के सागर में ही गोते लगाती रहती।
अपने उन गहन पीड़ा के क्षणों में कभी घरवालों और कभी महत्वाकांक्षाओं की अनथक दौड़ ने उसे थका दिया है, क्लान्त कर दिया है। आवश्यकता है कि वह स्वयं से जुड़े, स्वयं को जाने और पहचाने।

योग के द्वारा प्रदत्त यम जिसमें सत्य, अहिंसा,अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (अधिक संग्रह न करना), ब्रह्मचर्य को व्यक्ति अगर थोड़ा सा भी जीवन में अपना पाता है तो उसे अपने अन्दर एक गहन शक्ति का आभास होता है। शौच (सफाई–बाह्य और आन्तरिक), संतोष, तप (इन्द्रियों पर नियंत्रण), स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान कुछ ऐसे शक्तिशाली नियम हैं जो व्यक्ति के जीवन की धारा बदलने में पूर्णतया सक्षम हैं। निरन्तर प्रयास ही सफलता की कुंजी है। यही दिव्य जीवन जीने की कला है।

नौकरों पर ही खीजती रहती।।
गर प्रभु का साथ मेरे दिल में न होता।
एक आसरा मुझे था उस ऊपर वाले का।
एक हौसला मुझे था उस काली कमली वाले का।।
यदि मैं मन से सच्ची हूँ, तो वो मुझे इस कुएँ से निकालेगा।
यदि उसका कानून सच्चा है, तो वो मुझे कोई एक सेवा का मौका देगा।
यदि वो वाकई में अन्तर्यामी है, तो मेरी व्यथा जानेगा।
यदि वो वाकई में शक्तिशाली है, तो मुझे शक्ति देगा।
यदि वो वाकई में भक्तवत्सल है, तो मेरी मदद करेगा।
पीड़ा के उन क्षणों में, कितनी बार उसको कोसा।
पीड़ा के उन क्षणों में, कितनी बार उससे झगड़ा किया।
अरे कैसा भक्तवत्सल है तू ? तेरे भक्त कष्ट पाएँ और तू मुस्कुराए ?

अरे कैसा दिलबर है तू ? हम तुझे पुकारें और तू न आए ?
पर वो दयालु कृपालु एक बार भी न रूठा।
हमें लुभाता रहा, अपनी शक्ति और ऊर्जा से आप्लावित करता रहा।
संसार के लोग मुँह मोड़े, पर वह कभी भी साथ न छोड़े।।
जब वो जीवन में आ जाए तो कहाँ की पीड़ा और कहाँ का दुःख ?
चारों ओर मंगल ही मंगल। चारों ओर आनन्द ही आनन्द।।
अरे मानव ! जाग तू ! उस प्रभु का न छोड़ साथ तू।
इस भवसागर में नैया तेरी डूब जाएगी।
दिन रात चिन्ता, दुःख और परेशानी तुझे जलाएगी।।
याद कर ले उस सर्व नियंता को।
कानून मान ले उस सर्वनियंता का।।
अच्छा सोच और अच्छा कर।
दुःखी, गरीब और वृद्धों की मदद कर।।

दुआएँ तू लाखों पाएगा।
उन्हीं दुआओं की नाव में तू भवसागर से तर जाएगा।।
दुआओं की तू कर ले कमाई।
क्या धर्म और क्या देश, सब हैं भाई, भाई।।
सब एक ही ईश्वर की संतान हैं।
सबने एक दिन जन्म लिया, सबका एक दिन मरण है।।
सब का अंत एक सा। सब का आरम्भ एक सा।।
फिर अभिमान कैसा ? फिर क्रोध कैसा ?
जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। दुःख देगा तो दुःख पाएगा।।
करुणा करेगा तो कृपा पाएगा। दया करेगा तो कृपा पाएगा।।
सोचना तुझे है। पाना तुझे है। करना तुझे है। अच्छा या बुरा, चुनना तुझे है।
अपने करमों की लेखनी से अपना भाग्य तू बदल सकता है।
जो नहीं था तकदीर में, वो भी पा सकता है।।

मेरी कहानी – मेरी जबानी

मेरा जन्म उत्तर भारत के एक छोटे से प्रान्त हरियाणा के एक नगर अम्बाला छावनी के मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। 9 भाई बहनों में, मैं सबसे छोटी हूँ। छोटी होने के कारण सबका लाड़, प्यार और दुलार सहज ही मुझे प्राप्त हुआ। माता पिता के स्नेह की छाँव में पलते बढ़ते हुए, मैंने अपनी शिक्षा सदैव उच्च अंको में प्राप्त की। कई रजत और स्वर्ण पदक आज भी मुझे उन सुनहरे दिनों की याद दिलाने में सक्षम हैं। पढ़ाई में अच्छी होने के कारण, सभी शिक्षकों का अनुग्रह और स्नेह भी मुझे प्राप्त हुआ। परन्तु इतनी सब उपलब्धियों के बावजूद, मुझे घमण्ड कभी भी नहीं आया। अपने से कमजोर लड़कियों की मदद करना मुझे बहुत अच्छा लगता था। परीक्षा के दिनों में भी मेरे नोट्स की कापी अक्सर कमजोर लड़कियों के पिता जी माँग माँग कर ले जाते थे। मेरे माता, पिता और भाई बहनों को मुझ पर गर्व था।

उन सुनहरे पलों को जीते–जीते, समय मानो पलक झपकते ही बीत गया। फिर मेरा विवाह हुआ और जीवन के एक दूसरे चरण का प्रारम्भ हुआ। यह जीवन का सर्वथा एक नूतन आयाम था। शादी के बाद भी एक वर्ष मैंने पढ़ाई की और एक शिक्षिका का व्यवसाय चुना। छोटे बच्चों को पढ़ाना मुझे आज भी बहुत अच्छा लगता है। एक दम मिट्टी की तरह नरम ये बच्चे, मुझे ईश्वर के ही प्रतिरूप लगते हैं। इनका भोलापन, सच्चाई और ईमानदारी, सहज ही मन के गहरे कोने को छू लेती है। तनाव और चिन्ता मेरे चरित्र के दो ऐसे निहित पक्ष हैं, जिनके कारण मुझे अनेक निरर्थक समस्याओं का सामना करना पड़ा। आज से 20 वर्ष पूर्व, 1988 में बदली हुई परिस्थितियों से सामंजस्य न बिठा पाने के कारण, मैं अत्यधिक दुःखी रहने लगी। परिणाम ! भयंकर कमर दर्द के रूप में सामने आया। सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक अनुकूलता के बावजूद, स्लिप डिस्क और सायटिका के कारण मैं बहुत कष्ट से गुजरी। जब बिस्तर से उठना भी मुश्किल हो गया, तब कुछ दिनों के

लिए मुझे अस्पताल में भरती किया गया और ट्रेक्शन इत्यादि के द्वारा मेरा उपचार किया गया। छोटे बच्चे के साथ, अनेकों कठिनाईयों का सामना करते हुए, मैंने असीम धैर्य और साहस के साथ अपने आत्म बल को बनाए रखा। अपनी सकारात्मक सोच का मैंने भरपूर प्रयोग करते हुए उस दर्द के गहरे कुएँ से स्वयं को बाहर खींचा।

जीवन धीरे–धीरे फिर सामान्य गति से चलने लगा। परन्तु अब कमर दर्द मेरे जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया था। उसको अपनी नियति समझ कर, मैंने स्वीकार कर लिया था। कुछ वर्ष बाद, मेरे पति की पित्त की थैली में पथरी हो गई। उन्हें पथरी के कारण असहनीय पीड़ा हुई और पेंक्रियाज़ में इन्फेक्शन भी हो गया। तब उनका बड़ा आपरेशन हुआ। लगभग तीन चार महीने की अस्पताल की भागदौड़, तनाव, चिन्ता और परेशानी से गुजरने के पश्चात् मेरा कमर दर्द, मुझे अत्यधिक परेशान करने लगा। दर्द की अनगिनत गोलियाँ खाते खाते, मेरा पेट भी निरन्तर (एसिडिटी) अम्लीयता के कारण

दुखता रहता। कमर दर्द के अतिरेक के कारण, मुझे पुनः बिस्तर पर पूर्ण विश्राम का आदेश चिकित्सकों ने दिया। बार–बार अपने कमर दर्द के कारण मैं बहुत परेशान थी। तब अपने बड़े भाई के कहने पर, मैंने योगाश्रम आने का, योग के द्वारा अपने कमर दर्द का निदान करने का निर्णय लिया। शुरू में अनेक कठिनाईयों का सामना करने के बावजूद, अपने निर्णय को एक मौका, मैंने ईमानदारी से दिया। आखिरी विकल्प के रूप में, मैं योग की शरण में 1993 में आई।

भिलाई (छ.ग.) के ज्ञानदर्शन योगाश्रम में आने के बाद मुझे धीरे–धीरे बहुत अच्छा लगने लगा। यहाँ के आचार्य स्वामी देवशंकरानंद जी ने मुझे बहुत स्नेह और धैर्य के साथ सिखाया। कमर दर्द की अधिकता के कारण न तो मैं लेट सकती थी, न ठीक से अधिक देर बिना सहारे के बैठ सकती थी। पेट की पाचन शक्ति भी अत्यधिक न्यून थी। वजन कम होने के कारण, मुझे बहुत ज्यादा थकान भी रहती थी। समय–समय पर दर्द निवारक गोलियाँ भी खानी पड़ती थी जिससे पाचन तंत्र और भी

गड़बड़ा जाता था।

स्वामी जी ने सबसे पहले मुझे पवनमुक्तासन–भाग 1, मकरासन, भुजंगासन और शलभासन सिखाया। बहुत ही धीरे–धीरे उन आसनों को मैं कर पाती थी। परन्तु स्वामी जी मेरा निरन्तर उत्साह बढ़ाते रहते थे। मैंने खूब मन लगा कर उन आसनों और प्राणायामों को दिन में दो बार करना शुरू किया। उसके साथ उन्होंने मुझे 108 बार अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए महामृत्युंजय मंत्र का जप करने के लिए कहा। कमर दर्द के कारण धूप निकलने के बाद ही 10–11 बजे नहाती थी, परन्तु स्वामी जी ने कहा **"आप वहम मत करिए। मन की सफाई, तन की सफाई से अधिक आवश्यक है। आप सुबह बिना नहाए घर के काम के बाद, यहाँ तक कि नाश्ता खाने के बाद भी जप कर सकते हो।"** उनके इस कथन से मैं निश्चिंत हो गई ओर नियमित रूप से बिना अधिक विश्वास के ही अँगुलियों पर गिन कर जप करने लगी। मासिक धर्म में भी उन्होने मंत्र के लिए कोई वहम, मन में न लाने को कहा।

3 महीने के भीतर ही परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे। मेरा दर्द एक हद तक ठीक होने लगा। शरीर का वजन और शक्ति धीरे–धीरे बढ़ने लगी। कब्ज जो मुझे बचपन से ही था, वह भी लघुशंख प्रक्षालन और ताड़ासान के अभ्यासों से एक हद तक ठीक होने लगा।

6 महीने के भीतर ही मैं काफी स्वस्थ हो गई। उन्हीं सरल आसनों के साथ धीरे–धीरे उन्होंने मुझे पवनमुक्तासन–II सिखाया, पेट के पाचन तंत्र को मजबूत बनाने के लिए। बीच में कभी–कभी वो ध्यान भी करवाते थे जो मुझे बहुत अच्छा लगता था। खास कर योगनिद्रा के पश्चात् मन बेहद शान्त हो जाता था और एक गहन ऊर्जा का अहसास पूरे दिन बना रहता था।

द्रुतगति से स्वास्थ्य में सुधार आने के कारण मेरा खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः जाग्रत हो गया। एक नूतन उत्साह से मैं भर उठी। मेरे मित्र और परिवार वाले भी इस परिवर्तन से बेहद प्रसन्न और आश्चर्यचकित थे। अपने व्यक्तित्व के बदलाव से

मैंने अनेक लोगों को अनजाने में ही योग से अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधारने की प्रेरणा दी। एक वर्ष के बाद स्वामी जी ने मुझे सूर्यनमस्कार सिखाया। पूरा एक वर्ष मैं धैर्य से अपने शरीर की शक्ति वापिस लौटाने के लिए, ईमानदारी से सब सरल अभ्यास दिन में दो बार करती रही। रोज़ कक्षा में, मैं और लोगों को सूर्यनमस्कार का अभ्यास करते देखती, स्वामी जी द्वारा बताए गए उसके अनेक लाभ सुनती रहती थी, जैसे सूर्यनमस्कार एक रामबाण औषधि है सब रोगों के निवारण के लिए। परन्तु मुझे स्वामी जी के ऊपर पूरा भरोसा था कि वो जब ठीक समझेंगे, तब मुझे स्वयं सूर्यनमस्कार सिखाएँगे। गुरु के ऊपर पूरा विश्वास रखते हुए उनके निर्देशों का पालन मैंने लगन और मेहनत से किया। सूर्यनमस्कार एक संपूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक साधना है। इसके परिणाम मुझे अत्यधिक ऊर्जा और स्वास्थ्य लाभ के रूप में शीघ्र ही मिलने लगे। धीरे–धीरे मेरी भूख भी बढ़ गई और वजन भी

बढ़ने लगा। मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गई। और तब मैंने सोचा कि अब मैं कभी बीमार नहीं पड़ूँगी, अतः मैंने योगाश्रम जाना बन्द कर दिया। यह एक गलत निर्णय था, जिसके लिए मैं आज भी पछताती हूँ। कुछ महीने घर में नियमित रूप से अभ्यास किए, परन्तु फिर धीरे–धीरे चुपके से कहीं से आलस्य पुनः वापिस आ गया। प्राणायाम सबसे पहले छूटा। यदि करती भी थी, तो नाम मात्र के लिए। धीरे–धीरे आसन भी छूटने लगे। बरसात और सर्दी में यदि कमर दर्द वापिस आता था तो भुजंगासन, शलभासन और मकरासन करने से ठीक हो जाता था। इस तरह जीवन फिर एक ढर्रे से चलने लगा।

मेरे बेटे के बड़े होने से और दूसरे बच्चों को गणित पढ़ाते–पढ़ाते, मेरी सामाजिक जिम्मेदारियाँ बढ़ने लगीं। बच्चे भी बहुत अधिक संख्या में आने लगे। मेरी किटी पार्टी और शाम को अतिथियों के साथ समय बिताते–बिताते, मैं बहुत थकने लगी। धीरे–धीरे मानसिक शान्ति और ऊर्जा जो मुझे आसन

प्राणायामों से मिलती थी, वह भी क्षीण हो गई। मैं अक्सर अपने दैनिक कार्यक्रमों में, समय और ऊर्जा की कमी के कारण चिड़ाचिड़ाने लगी। तनाव और चिन्ता दुगुने वेग से मुझे व्यथित करने लगे। कमर दर्द भी पुनः जल्दी–जल्दी वापिस आने लगा। क्रोध और तनाव ने सहज ही मेरे व्यक्तित्व को आच्छादित कर दिया।

आखिर बेचारा शरीर! कब तक सहता। सन् 2001 में मुझे गठिया के प्रकोप का सामना करना पड़ा। शरीर के सारे जोड़ धीरे–धीरे जकड़ने लगे। घर के साधारण कार्य करने में भी मुझे बहुत कठिन लगने लगे – सब्जी हिलाना, कपड़े पहनना–उतारना और कंघी करना इत्यादि उन में से कुछ हैं। रात भर पीड़ा के कारण करवटें बदलती रहती। धीरे–धीरे मेरे दोनों घुटनों में पानी भर गया और सूजन आ गई, जिससे चलना फिरना भी मुश्किल हो गया। योगाश्रम के आचार्य स्वामी देवशंकरानन्द जी उस समय कैंसर की बीमारी से जूझ रहे थे।

अब इसे नियति का खेल कहूँ या क्या, कि अपनी नासमझी में, मैंने उनसे पूछना भी ठीक नहीं समझा। जिस समय आसन, प्राणायाम और ध्यान की मुझे सबसे ज्यादा जरूरत थी, मैंने उन्हें धीरे–धीरे दर्द के कारण छोड़ दिया। मैं और मेरे पति, एक डॉक्टर से दूसरे डॉक्टर के पास चक्कर लगाने लगे। दर्द की गोलियों की लत मुझे पड़ गई। यदि गोली नहीं खाती तो दर्द असहनीय हो जाता। कभी–कभी दर्द के अतिरेक के कारण मैं रोने लग जाती। घर वालों की सांत्वना भी मेरी दुखती रग को कोई राहत पहुँचाने में असमर्थ थी। धीरे–धीरे मेरी दवाईयाँ बढ़ने लगीं। तनाव, चिन्ता, और अवसाद (गहरी निराशा) ने मुझे घेर लिया। स्टीरॉयड्स और मिथोडैक्सट्रेट खाते–खाते मेरा पेट निरन्तर दुखता रहता, डॉक्टर बोलता कि बार–बार ठंडा दूध थोड़ा–थोड़ा करके पिओ। अब जोड़ों का दर्द और ठंडा दूध! धीरे–धीरे घुटने लेटने के समय सीधे होने भी बन्द हो गए। चादर भी मैं अपने आप से नहीं ओढ़ सकती थी। दोनों घुटनों के नीचे कुशन लगा कर ही सीधे लेट पाती थी। चलने फिरने में भी

लड़खड़ाने लगी। मेरा वजन दिन प्रतिदिन कम होने लगा और हल्का–हल्का बुखार भी रहने लगा। डॉक्टर को शक हुआ कि कहीं मुझे टी.बी. न हो, अतः टी.बी. की ढेर सारी दवाईयाँ भी खानी पड़ती थीं। पानी डर के मारे कम पीती थी क्योंकि 20 कदम चलने में मुझे आधा घण्टा लगता था। प्रत्येक कदम पर दर्द की एक लहर मुझे बेधती थी, जिसके कारण रोते–रोते, स्वयं को घसीटती थी। पूरा जीवन मानो एक दर्द ही बन गया था। दूर–दूर तक अंधेरा ही अंधेरा था।

मेरे पति हर समय तनाव और विषाद में रहते, मुझे देख–देख कर। उनकी परेशानी से मैं एक गहन अपराध बोध से ग्रस्त हो उठती। यद्यपि वो मुँह से कुछ नहीं कहते थे, परन्तु उनका चेहरा मुझे उनकी आन्तरिक व्यथा का सारा हाल बता देता था। इतना सब होने के साथ विभिन्न प्रकार के रक्त के टेस्ट भी नियमित रूप से करवाने पड़ते थे। लगातार स्टीरॉयड्स खाने से मेरी खाने की नली (फूड पाइप) में जख्म हो गए, इंफेक्शन के कारण। स्टीरॉयड्स खाने से मेरी रोग

प्रतिरोधक क्षमता कम जो हो गई थी। नाखूनों में भी फंगस इंफेक्शन आ गया। बड़े–बड़े कैपसूल निगल नहीं पाती थी, अतः उनको पीस कर शहद मिला कर खाना पड़ता था। एन्डोस्कोपी करवाने के लिए खाली पेट जाना मेरे लिए एक दुष्कार कार्य था। एक बार उस मेज तक पहुँचते–पहुँचते मैं इतना थक गई कि जोर–जोर से रोने लगी, थकान और घबराहट के कारण। पर डॉक्टर ने बहुत अच्छे से मुझे न केवल सांत्वना दी अपितु अपने कीमती समय में से, कुछ समय निकाल कर मेरे सामान्य होने का धैर्य से इन्तजार किया।

आज भी वह सब याद करके मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नहाने और कपड़े पहनने के लिए मुझे दूसरों की मदद लेनी पड़ती थी। मैं अन्तरतम् तक एक गहन अपराध बोध से ग्रस्त रहते हुए, अपने लिए मृत्यु की कामना करती रहती थी। एक समय ऐसा था कि जब दाहिना कन्धा और कोहनी दोनो जकड़ गए थे। तब मुझे एक हाथ से ही खाने के अतिरिक्त सब काम करने पड़ते थे। एक हाथ से कैसे नाड़ा खोलूँ? कैसे शौचादि से

निवृत्त होऊँ? एक बार जबड़े का जोड़ जकड़ जाने से खाना चबाना भी दुष्कर हो गया। मुझे लगा था कि दाँत में कुछ तकलीफ होगी, परन्तु दाँतो के डॉक्टर ने कहा कि यह गठिया के कारण था। कई महीनों तक रोटी को दाल या रसे की सब्जी में भिगा–भिगा कर, नर्म करके, धीरे–धीरे चबा कर ही खाना पड़ता था।

बिस्तर पर मैं आराम करने के लिए लेटना नहीं चाहती थी क्योंकि दोनो कंधों के जोड़ इतने ज्यादा जकड़ गए थे कि एक बार लेट कर अपने से उठ नहीं पाती थी। चादर स्वयं ओढ़ नहीं पाती थी। दिन रात एक दहशत के साये में ही जीवन व्यतीत करने पर मैं मजबूर थी। घर में धन की कमी न होने पर भी, कोई ढंग का विश्वस्त नौकर मिल नहीं रहा था। ऐसे समय में केवल और केवल प्रभु का नाम ही मेरा सहारा था। और अधिकतर वो डोरी भी मेरे हाथ से छूटने लगती। सन् 1997 में जब मैंने ज्ञान दर्शन योगाश्रम गठिया के लिए दोबारा जाना शुरू किया। तब मेरे जीवन में एक ऐसी दिव्य घटना घटी जिसने मेरे जीवन की

राह ही बदल दी थी। उस घटना का मैं उल्लेख करना चाहूँगी– अन्तर्मौन के अभ्यास में एक दिन मेरा आध्यात्मिक जागरण हुआ। एक पल में ही प्रभु की दिव्य कृपा से मेरा तन मन ओत प्रोत हो गया। शब्द उस अनुभव को बाँधने में नितान्त असमर्थ हैं। मुझे ऐसे लगा था कि मानो जीवन के मरुस्थल में किसी ने अमृत की वर्षा कर दी हो। मेरे रोम–रोम में एक अनिर्वचनीय आनन्द और सुख व्याप्त हो गया। ऐसा सुख! ऐसी शान्ति! कल्पनातीत! संसार की किसी विषय वस्तु में, मैंने ऐसा दिव्य आनन्द प्राप्त नहीं किया था। मेरा मन उस बच्चे की तरह मचल उठा जिसे एक ऐसा उपहार मिल गया हो जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। मैं एक माँ हूँ। प्रत्येक स्त्री प्रसव पीड़ा के पश्चात् जब अपने बच्चे का मुख पहली बार देखती है तो वह क्षण उसको अनिर्वचनीय आनन्द और सुख से भर देता है। प्रत्येक माँ मेरी इस बात से सहमत होगी। परन्तु यह सुख! आनन्द! उस क्षण के आनन्द से भी कई गुना अधिक था। मैं तो मानो पागल ही हो गई

थी, उस सुख, उस आनन्द को एक बार पुनः चखने के लिए, अनुभव करने के लिए। मेरे गुरु स्वामी देवशंकरानन्द जी एक उच्च आध्यात्मिक संपदा के स्वामी थे। कई वर्षों से निरन्तर साधना करते–करते, उनके पास अनुभव की पूँजी थी। मेरे इस आध्यात्मिक जागरण से वह अत्यधिक प्रसन्न हुए। और तब उनका एक ऐसा रूप मेरे सामने आया जिससे मैं बिल्कुल अनजान थी। उन्होंने बड़े धैर्य और लगन के साथ, एक छोटे बच्चे की तरह उँगली पकड़ कर मुझे चलना सिखाया। मेरे डगमगाते कदमों को अपने विश्वास का सम्बल प्रदान किया। जब जब मैं, मन एकाग्र न होने के कारण विक्षिप्त हो जाती, दुखी हो जाती, वह कहते, "प्रीती जी प्रयत्न केवल आपके हाथ में है, वह करते जाईये, बाकी सब उस ईश्वर पर छोड़ दीजिए।" यदि मैं सच कहूँ तो उनकी वह शिक्षा मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं आती थी। परन्तु मेरे पास और कोई विकल्प भी तो नहीं था। बुझे मन से स्वयं को समझाने का असफल प्रयास करती। कभी–कभी

लगता कि यह सब मेरे मन का भ्रम है। तब दुःखी हो कर उनसे पूछती। वह हँस कर कहते, "नहीं नहीं ये आपके मन का भ्रम नहीं है। यह सत्य है। इसी जीवन में, इसी पृथ्वी पर इससे भी कहीं अधिक आनन्द संभव है।" तब दुगने उत्साह से उनके द्वारा बताई गई छोटी–छोटी सरल साधनाएँ करने लगती। कई बार मेरी सहेलियाँ मेरा मज़ाक उड़ाने लगतीं, कहतीं "अरे ये बहुत ध्यान करने लगी है, ये तो अब संन्यासिन बन जाएगी।" मेरा कमजोर मन फिर विचलित हो जाता। जब उनको जाकर पूछती तो वो खूब जोर से हँसते और कहते, "नहीं नहीं अभी आपने पाया ही क्या है? और संन्यास लेना क्या इतना सरल है? आखिरी रास्ता तो एक यही है। आप बिल्कुल ठीक रास्ते पर जा रही हैं।" इस तरह डूबते, हिचकोले खाते अपने कमजोर मन की लगाम फिर से संयम के दृढ़ हाथों में पकड़ती और नियमित अभ्यास आरम्भ करती। स्वामी जी कहते, **"लगन से अभ्यास करते जाओ। धैर्य अवश्य परिणाम लाएगा।"** और उनकी

एक–एक बात मेरे जीवन में सत्य होने लगी। नियमित अभ्यास, धैर्य और शुरू में थोड़ा सा विश्वास ही उस आनन्द को प्राप्त करने की एक मात्र कुंजी है।

जब 2001 में, मैं इन सब एक के बाद एक आने वाली भयंकर, कभी न खत्म होने वाली बीमारी से जूझ रही थी, तो प्रभु की उस कृपा को याद करके ही मेरा मन थोड़ा सा टिक पाता था। और जो लोग पहले ध्यान करने के लिए मुझे रोकते थे, मेरा मज़ाक उड़ाते थे, अब मुझे ध्यान का सहारा लेने के लिए कहने लगे। परन्तु ध्यान तो बहुत दूर, प्रभु नाम सिमरन भी धीरे–धीरे छूटने लगा था। जब स्वामी जी को फोन करके कहती, तो वो बहुत सांत्वना देते और कहते "प्रीती जी आप इस रोग के साथ ध्यान नहीं कर पाएँगी। आप केवल जप की माला हाथ में पकड़े रहिए और जप करते जाईये।" वह स्वयं भी कैंसर से जूझ रहे थे, अतः मुझे बार–बार उन्हें परेशान करना भी अच्छा नहीं लगता था। परन्तु पूरी रात मैं रोते–रोते भी, प्रभु नाम सिमरन माला के

द्वारा करने का भरसक प्रयत्न करती थी। प्रभु ने मुझे यह तकलीफ तो दी परन्तु अपने कई दूत भी मेरे पास भेजे, जिन्होंने मुझे बहुत सहारा दिया। मेरी डूबती हुई नैया को पार लगाने में एक वृहद् भूमिका निभाई। कई डॉक्टारों ने मेरे साथ बहुत सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हुए, अपना कीमती समय मुझे परामर्श देने में व्यतीत किया। आज भी उन चिकित्सकों के लिए मेरे अन्तर्तम् मन से स्वतः ही दुआ निकल जाती है।

एक दिन जब मेरे पति, मेरी पहिया कुर्सी डिस्पेन्सरी (औषधि कक्ष) में रख कर मेरे कुछ खून की जाँच के कागज़ लेने के लिए गये तो प्रभु एक क्रिश्चियन लड़की के रूप में मेरे पास आए। उस लड़की ने मुझसे कहा "आप सारा जीवन इस पहिया कुर्सी में नहीं रहोगी। आप करोड़ों लोगों के लिए प्रेरणास्रोत बनोगी।" उसने कहा कि "उसे प्रभु के संदेश लोगों के लिए आते हैं और वो उनको उसी समय सुना देती है।" मैंने उससे कहा, "हाँ मैं जानती हूँ। मुझे अपने प्रभु पर पूर्ण विश्वास है।" उस दिन

के पश्चात् मैं उस लड़की को कभी नहीं मिली। परन्तु आज उसकी बात याद करके, मुझे उसका सहज ही प्रभु के रूप में स्मरण हो आता है।

सीमा से अधिक निरन्तर बढ़ते हुए दर्द ने मेरे धैर्य और विश्वास की मानो गहरी जड़ें भी हिला दी थीं। एक और संत जो सहारनपुर में रहते हैं और निःस्वार्थ भाव से गरीबों का इलाज दुआ और दवा दोनों से करते हैं, उन्होंने भी मेरे भाई के पूछने पर कहा, **" आप की बहन बिल्कुल ठीक हो जाएँगी। उनकी सब दवाईयाँ और तकलीफें भी छूट जाएँगी।"** उस समय ये बातें मुझे असंभव ही प्रतीत होती थीं मानो कोई आकाश से तारे तोड़ के लाने की बात करता हो।

एक्यूप्रेशर और सुजोक के विशेषज्ञ भी घर आ कर ही मेरा उपचार कर देते थे। वे भी आध्यात्मिक संपदा के धनी थे। उन्होंने न केवल अपनी ऊर्जा अपितु अपनी भविष्यवाणियों से मेरा उत्साह निरन्तर बनाए रखा। कई वर्षों से मैं कुछ सार्थक

सेवा करना चाहती थी। घर की जिम्मेदारी के कारण समय निकालना असंभव था। मुझे लगता था कि बेटे के हॉस्टल जाने के बाद मज़े से सेवा का काम करूँगी। और जब उसकी स्कूल की पढ़ाई खत्म करके छात्रावास में जाने को समय आया तब ये भयंकर रोग मेरे जीवन में एक अनचाहे मेहमान की तरह आ कर जम गया। परन्तु एक्युप्रेशर विशेषज्ञ ने मेरी निरन्तर हिम्मत बढ़ाई और कहते हैं कि, "तुम कुछ न कुछ सेवा का काम जरूर करोगी। तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी।" अपना उदाहरण भी देते और कहते कि "मैं भी 9 साल बीमार रहा, परन्तु अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ और सेवा कर रहा हूँ।"

ऐसे–ऐसे तिनकों का सहारा लेकर, मैंने अपना मनोबल बनाए रखने का भरसक प्रयास किया। जप भी करती रहती, रोती भी रहती और कभी–कभी ईश्वर से लड़ भी पड़ती। कहती "अरे तू कैसा भक्त वत्सल है ? मैं इतनी तकलीफ पा रही हूँ। और तू कुछ नहीं कर रहा। यदि नारद भक्ति सूत्र में सब सच

लिखा है तो मुझे सच कर के दिखा।" एक वास्तुशास्त्र विशेषज्ञ ने हमको कई सरल उपाय बताए। जैसे बिस्तर के सामने से शीशा हटाना, बिस्तर पर "मैं ठीक होना चाहती हूँ" लिखकर पिरामिड लगाना, मेरा पीने का पानी पिरामिड पर रखना आदि आदि। तुलसी के अनेक पौधे पीछे के आँगन में लगाये और एक मेरे सोने के कमरे में रखा। मेरी दवाईयों को रखने के लिए भी उन्होंने एक पिरामिड दिया, ताकि उनका साइड इफेक्ट कम हो। और सच में उन दवाईयों का बहुत अधिक बुरा प्रभाव मेरे आन्तरिक अंगों पर नहीं पड़ा।

आर्य समाज के एक शास्त्री जी ने मुझे दैनिक यज्ञ के लिए प्रेरित किया। उस रोग के लिए उन्होंने मुझे साल धूप, रालगोंद, गुग्गल और गिलोय हवन सामग्री में मिलाने के लिए कहा। मेरी एक सहेली (जो दैनिक यज्ञ करती है) ने मुझे आकर सरल रूप से दैनिक यज्ञ सिखा दिया। यज्ञ करने से मेरे मन में असीम शांति और ऊर्जा का संचार हुआ। नीचे न बैठ पाने की स्थिति में,

रसोई कक्ष में ही मेज पर बैठ कर हवन, मैं लगभग 2 साल तक करती रही। अब मैं नित्य हवन अपने पूजा कक्ष में जमीन पर बैठ कर ही कर लेती हूँ।

ईश्वर की असीम कृपा से मेरे सर्वेंट क्वाटर वाली नौकरानी ने एक माँ की तरह मेरी देख भाल की। हवन की सारी तैयारी (लकड़ी काटने से लेकर, सामान रखने तक) भी वही कर देती है। मुझे यह लिखते हुए जरा भी शर्म नहीं महसूस होती कि इस बीमारी में उसने मेरे गंदे कपड़े भी निःसंकोच धोए। अन्य कई छोटे छोटे काम भी वह सहज ही कर देती थी। कभी कभी लगता है कि मैं उसकी सेवा का कर्ज इस जन्म में तो नहीं उतार पाऊँगी।

लहसुन की 2–5 कली दूध में उबाल कर सुबह और रात को नित्य प्रति दिन लेने से मुझे आज भी दर्द में एकदम राहत मिलती है। हल्दी, मेथी, और सौंठ बराबर मात्रा में मिला कर मैंने एक बोतल में रखी हुई है। वह भी एक चुटकी उसमें डाल लेती

हूँ। इस तरह मुझे एलोपैथिक दवा की गोली नहीं खानी पड़ती। 'टेब' नामक एक संस्था से आयुर्वेदिक इलाज करवाने से भी मुझे आराम मिला था, परन्तु उसमें 5000 रूपये महीने का खर्चा था। मेरे पति को सुबह शाम एक घण्टा मेरी मालिश और स्टीमींग भी करनी पड़ती थी। वह बहुत ज्यादा थक जाते थे।

एक बार मेरा हीमोग्लोबिन 4.4 हो गया। खून की दो बोतलें चढ़ानी पड़ीं। डॉक्टरों को शक था कि मुझे हृदय रोग भी हो गया था। तनाव और चिंता अपनी चरम सीमा पर थे। तब एक चिकित्सक के परामर्श से , मेरे पति और मैं वैलोर के सी.एम.सी. अस्पताल में खून की जाँच के लिए गए। अपनी लाठी के साथ इतनी दूर का सफर मेरे लिए आसान नहीं था। दो गाड़ियाँ भी बदलनी पड़ीं। पर वहाँ जा कर मुझे बहुत अच्छा लगा। डॉक्टरों ने मेरी शारीरिक और मानसिक स्थिति का अन्दाज़ा लगाने के लिए अपना बहुत सा समय मुझे दिया और कई सवाल पूछे। मुझे बहुत अच्छा लगा; ऐसा लगा कि मानो कोई तो मेरी पूरी बात

सुनने के लिए तैयार है। दिल के सारे परीक्षणों से मालूम पड़ा कि केवल चिन्ता और तनाव ही मेरी परेशानी के मुख्य कारण थे। गठिया के लिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के शारीरिक अभ्यास करते रहने की सलाह दी। मुझे याद आता है कि सन् 2001, अगस्त में जब मैं आल इन्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल सांइस गई थी, वहाँ भी डॉक्टर बहुत अच्छे थे। उन्होने स्टीरॉयड्स छोड़ने और विभिन्न शारीरिक व्यायाम करने के लिए एक विशेषज्ञ के पास जाने का परामर्श दिया था। अज्ञानता के कारण किसी ने उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। तब लगभग ढाई महीने मैं अपने बड़े भाई के पास रही थी। पूरे परिवार ने बहुत प्यार और स्नेह के साथ मेरी देख भाल की थी। अपोलो के एक गठिया विशेषज्ञ से मेरा इलाज चल रहा था। मानसिक रूप से तो मैं वहाँ बहुत शान्त हो गई थी, परन्तु शरीर की अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती ही चली गई।

भिलाई आकर मैने फिज़ियोथेरेपी विभाग में जाकर

सिकाई और अभ्यास सीखे। उससे बहुत थोड़ा सा आराम मिला। एक लड़की जो ट्रेनिंग कर रही थी वह प्रतिदिन अभ्यास कराने, मेरे घर आने लगी। हे राम! आज भी उस समय को याद करके मेरा कलेजा दहल जाता है। इतनी पीड़ा ! कि मैं बयान नहीं कर सकती। परन्तु प्रभु ने उस रूप में आकर, मेरी नैया को एक महत्वपूर्ण दिशा दी। रोज 1 घण्टा मैं लगातार रोती रहती, अपनी विभिन्न परेशानियाँ उस लड़की को बताती रहती। वह लड़की बहुत धैर्य और प्यार से मुझे अभ्यास सिखाती थी। कभी–कभी जब बहुत पीड़ा के कारण मैं मना करने लगती तो मुझे डाँटती भी थी। बिस्तर पर बैठना, बैठ कर उठना भी एक अत्यन्त पीड़ादायक काम था। उसने आते ही मेरे बिस्तर के पास रखे पीने के पानी को उठा दिया, बोली "आप रसोई कक्ष में खुद जाकर पानी पिओ चाहे 30 कदम चलने में आपको 30 मिनट ही क्यों न लग जाएँ। "उसकी ये सलाह उस समय मुझे जहर की तरह लगती थी; परन्तु वह बहुत प्यार से समझाती थी। कहती

"ये अभ्यास दिन में तीन बार करो।" रोज मैं उससे कहती , "रानो, यदि ये अभ्यास मैं तीन बार नहीं करूँगीं तो क्या होगा ?" उसका एक ही जवाब होता "आप जीवन भर के लिए बिस्तर पर ही रहोगे। बाई आएगी तो एक गिलास पानी देगी।" भविष्य की ऐसी भयानक कल्पना से मेरा रोम रोम काँप उठता। अपनी सम्पूर्ण इच्छा शक्ति का प्रयोग करते हुए मैं उन दर्दनाक अभ्यासों को दिन में तीन बार रोते–रोते भी करती। बरसात के दिनों में दर्द बढ़ जाता। तब भी सैर मैं घर के अन्दर स्वयं को घसीट–घसीट कर ही करती। उसने खूब सारे तकिए लगा कर मुझे सहारा ले कर स्वतः बिस्तर से उठना सिखाया। शुरू में मुझे लगता मानो मैं एक पहाड़ की चढ़ाई चढ़ रही हूँ। थक जाती, हिम्मत टूटने लगती। परन्तु वह रोज आकर पूछती, "आज सुबह अंकल ने आपको बिस्तर से उठाया या आप स्वयं उठे थे ?" धीरे–धीरे उसने मुझे चाय बनाने, खाना बनाने के लिए प्रेरित किया। और लगभग 2 महीने के पश्चात् मेरा दर्द कम होने लगा, जोड़ खुलने लगे। उसने निरन्तर मेरा उत्साह वर्धन करते हुए,

स्टीरॉयड्स भी छुड़वा दिए। उनको छोड़ना अत्यधिक दुष्कर कार्य था। एक बार मेरा रक्तचाप (बी.पी.) 40/60 हो गया, दिल बहुत घबराने लगा। परन्तु डॉक्टर के कहने पर भी मैंने अन्य उपचारों का भरोसा करते हुए, स्टीरॉयड्स को पुनः लेना आरम्भ नहीं किया। ईश्वर पर मेरा विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। तब उस लड़की की सलाह पर मैंने कैसेट के द्वारा पुनः ध्यान का अभ्यास शुरू किया। मेरे व्यवहार में आए परिवर्तन ने उसे भी ध्यान सीखने के लिए प्रेरित किया। उस अवस्था में भी मैंने उसको अनेक छोटी छोटी साधनाएँ सिखाईं।

उस के द्वारा सिखाए गए शारीरिक अभ्यासों में मैंने अनेक योग के पवनमुक्तासन– I के अभ्यास स्वयं ही जोड़ लिए। धीरे–धीरे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधरने लगा। मतलबी मित्रों ने हमें बहुत पहले ही छोड़ दिया था। परन्तु कुछ सच्चे मित्रों ने निरन्तर मेरी हिम्मत बढ़ाने में एक वृहद् भूमिका निभाई। अन्य कई लोगों का अन्यथा रूप मैंने देखा। और 45 साल की उम्र में मानो मैं अपने अनुभवों से 20 साल बड़ी हो गई।

सन् 2003 में मैंने ड्राइवर और लाठी के साथ पुनः ज्ञानदर्शन योगाश्रम आना शुरू किया।

स्वामी जी ने मुझे एक बैंच दिया और भरपूर सहयोग दिया। मंगलवार और शुक्रवार के दिन ध्यान का अभ्यास होता है। वो ही दो दिन मैंने आने के लिए चुने। योगनिद्रा और ध्यान के अभ्यासों से मन के किसी गहरे कोने में एक नई आशा की किरण का संचार हुआ। मुझे आज भी वह दिन याद है, जब मैं तीन साल के बाद एक दिन अचानक खुद बिना सहारे के बिस्तर से उठ गई। मैं और मेरे पति बहुत खुश हो गए थे। ईश्वर प्रदत्त सामान्य स्वास्थ्य की हम जरा भी कद्र नहीं करते और बाकी चीजों के लिए रोते रहते हैं। पहली बार जब अकेले लाठी के साथ अपने घर की तीन सीढ़ी चढ़ पाई थी, तब भी मेरा मन खुशी से झूम उठा था। धीर–धीरे तिल–तिल करके मेरी शक्ति बढ़ने लगी। दर्द का अतिरेक भी स्वतः ही कम होने लगा। वैसे भी मैंने इतनी अधिक पीड़ा झेल ली थी कि थोड़ी बहुत पीड़ा तो मुझे परेशान भी नहीं करती थी। या यूँ कहूँ कि मुझे दर्द के साथ जीने और

उसकी तरफ ध्यान न देने की आदत पड़ गई थी। और इस आदत की वजह से मैं आज भी बहुत खुश रहती हूँ। अब बढ़ती हुई उम्र के साथ शरीर रूपी मशीन थोड़ी तो चरमराएगी ही, तो उससे क्या घबराना और मैं अपना मन उस दर्द से हटाकर दूसरे कामों में लगाती हूँ, तो दर्द स्वयं ही गायब हो जाता है।

" अपने मन को सदैव व्यस्त रखो, किसी न किसी कार्य में। यही आध्यात्मिक जीवन में सफलता की कुंजी है।" – परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती।

गुरुदेव की यह शिक्षा अपने अनुभव से मैं शत प्रतिशत सही होते हुए देख रही हूँ। केवल आवश्यकता है अपने मन की दिशा बदलने की, स्वार्थ से निःस्वार्थ भाव की ओर। प्रभु कृपा तो स्वतः ही बरसने लगती है। बढ़ते हुए शारीरिक स्वास्थ्य ने मेरे अन्दर सोई हुई सेवा की इच्छा को पुनः जगा दिया। जब एक बच्चे को पुनः गणित पढ़ाने का अवसर आया, तो मैंने डरते डरते उसे स्वीकार कर लिया। उसके माता पिता को मेरी बीमारी के बारे में पता था, अतः मेरे मन पर कोई बोझ नहीं था कि यदि बीच में

छोड़ना पड़ा तो ? धोखा न हो जाए। बीमारी के दिनों में भी मैं एक गरीब लड़की को गणित निरन्तर बिस्तर पर ही लेट कर पढ़ाती रही थी।

अपनी मन पसन्द का कार्य होने से दिन के 2 घंटे कैसे निकल जाते पता ही नहीं चलता था धीरे–धीरे बच्चे बढ़ने लगे। प्रभु के कीर्तन सुनने से मुझे बेहद आनन्द आता था। और समय भी अच्छे से निकल जाता था। धीरे–धीरे मुझे समझ आने लगा था कि रात को टी.वी. देखने के बाद जब मैं सोने लगती, या तो नींद आती ही नहीं थी बहुत देर तक अथवा बैचेनी सी बनी रहती। दूरदर्शन पर देखे गये चित्र जेहन पर उभरते रहते और वो वाक्य अगले दिन भी मन में गूँजते रहते। धीरे–धीरे मैने रात को टी.वी. देखना बन्द कर दिया। प्रभु नाम सिमरन और ॐ का उच्चारण करके सोने से नींद बहुत अच्छी आती थी और सुबह एकदम तरोताजा ही उठती थी। श्री स्वामी जी की एक पुस्तक में मैंने पढ़ा, **"रात को सोने से पहले किताब पढ़ना अच्छी आदत नहीं है। रात को सोने से पहले यदि योगनिद्रा की**

जाती है तो सूक्ष्म में बहुत गहरे प्रभाव पड़ते हैं।
– परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती

उनकी इस शिक्षा का प्रयोग करते हुए मैंने रात को बिस्तर पर लेट कर योगनिद्रा करनी आरम्भ की। शीघ्र ही इस सरल एवं लघु अभ्यास के अतिशय लाभ मुझे मिलने लगे। मन सारा दिन एकदम शान्त और प्रफुल्लित रहने लगा। मेरी नींद भी स्वतः ही कम हो गई। शारीरिक शक्ति में भी आश्चर्यजनक वृद्धि दिन प्रतिदिन दृष्टिगोचर होने लगी। तब मैंने धीरे–धीरे ड्राइवर को साथ बिठा कर पुनः कार चलाना प्रारम्भ किया। शुरू में क्लच दबाने के समय घुटने में थोड़ा दर्द होता था, परन्तु अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए, प्रभु नाम का सिमरन करते हुए, मैंने हिम्मत नहीं हारी। कार चलाने से, मैं योगाश्रम रोज आने लगी। सुबह दूसरी कक्षा जो 6.30 से 7.40 तक होती थी, वह मेरे को बहुत अच्छी लगती थी। मेरी प्राणशक्ति, आसन, प्राणायाम और ध्यान के अभ्यासों से निरन्तर बढ़ने लगी। जीवन पुनः सामान्य होने लगा।

बच्चों को योग सिखाना मुझे बहुत प्रिय है। अपने गुरु स्वामी देवशंकरानन्द जी के निर्देशन में बच्चों के तनाव और विषाद हटाने के लिए मैंने गठिया होने से पहले कई साल योग, गर्मियों की छुट्टियों में सिखाया था। घर में ही शनिवार शाम को लगभग 15 बच्चों को मैंने पुनः योग सिखाना शुरू किया। बच्चों और मुझे, दोनो को ही बहुत अच्छा लगा। सन् 2005 में परमहंस स्वामी निरंजन एक दिन के लिए राजनांदगांव रुके। तब उनके दर्शन से मेरे जीवन में एक नूतन अध्याय का आरम्भ हुआ। और मैंने ज्ञानदर्शन योगाश्रम में सेवा के रूप मे बच्चों को योग सिखाना आरम्भ किया।

खेलों द्वारा सिखाए गए इस योगकैंप में गुरु की कृपा से मैं एक आध्यात्मिक संस्कारो की नीव रख पाई। जो बच्चों और पालकों को बहुत ही अधिक पसन्द आई। आज भी ग्रीष्म और दीवाली अवकाश में ये सेवा करना मेरा मनपसन्द कार्य है; यद्यपि कई बार लगातार कैम्प होने से मैं बहुत थक भी जाती हूँ। सन् 2006 दिसम्बर के रिखिया के शतचण्डी यज्ञ में मुझे भाग

लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री स्वामी जी के दर्शन का सुअवसर प्रथम दिन ही प्राप्त हुआ। उनकी असीम ऊर्जा से सम्पूर्ण वातावरण आप्लावित हो गया। इतनी साधनाएँ, इतनी पुस्तकें और इतनी उपलब्धियों के बावजूद भी इतनी सरलता! बिल्कुल छोटे बच्चों की तरह! सब भक्तगण मंत्र मुग्ध से उनको देखते ही रह गए। पण्डाल में सब तरफ घूम–घूम कर स्वामी निरंजन के साथ, उन्होंने उपस्थित समस्त भक्तों को न केवल आशीर्वाद दिया अपितु कईयों से बातचीत भी की। वो एक अलग समाँ था। मधुर हास्यरस से मिश्रित उनके प्रवचनों को सुन–सुन कर सब भक्तजन हँसी से लोट पोट हो रहे थे। वातावरण में गूँजते हुए देवी माँ के कीर्तन एक अद्भुत समाँ बाँध रहे थे। मेरे जीवन का वह एक दिव्य अनुभव था।

यज्ञ के तीसरे दिन रिखिया पीठाधीश्वरी स्वामी सत्संगी ने मुझे बच्चों के योग के प्रशिक्षण के लिए रिखिया आने का निमंत्रण दिया। उस समय तो मुझे इस बात के महत्व का आभास नहीं हुआ। परन्तु जब मार्च 2007 में 25 दिन के लिए मुझे

आश्रम प्रवास का अवसर उन्होंने दिया, तब मैंने जिन्दगी का एक सर्वथा नूतन पक्ष देखा। वहाँ रहने वाले संन्यासियों का गुरु के प्रति समर्पण, आने वाले भक्तों का कर्म योग और स्वामी सत्संगी का मातृवत् स्नेह, दिल को किसी गहरे कोने को छू गया। वहाँ पर मैंने बहुत कुछ नया सीखा जिसने मेरे जीवन को एक नई दिशा प्रदान की। रिखिया पीठ के गहन आध्यात्मिक वातावरण में अंधविश्वास का लेश मात्र भी अंश नहीं है। विदेशी संन्यासी अलग तरीके से वस्त्र पहनते हैं। मासिक धर्म के दिनों में भी, मैं निरन्तर कीर्तनों और यज्ञ में उपस्थित रही। गठिया के कारण मैं सुबह ठण्डे पानी से स्नान करने में असमर्थ थी। अतः स्वामी सत्संगी ने बिना नहाए नवरात्री पूजा में भाग लेने और दोपहर को नहाने की अनुमति सहर्ष ही दे दी।

कर्मयोग की इस भूमि रिखिया पीठ में निष्काम सेवा के द्वारा व्यक्ति के आन्तरिक परिवर्तन पर ही विशेष जोर दिया जाता है। थोड़ा सा ध्यान और अधिक निःस्वार्थ कर्म, धीरे–धीरे व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। गरीब आदिवासी

(बालक) बटुक और कन्याओं द्वारा किये संस्कृत श्लोकों के पाठ, कीर्तन और हवन भी जाति पाति के समस्त अंधविश्वास का सहज ही उन्मूलन करने में सक्षम हैं। इन बच्चों को यहाँ दैवी ऊर्जा का स्रोत माना जाता है और भरपूर प्यार और स्नेह दिया जाता है।

सन् 2007 में श्री स्वामी जी के 12 वर्षीय शतचण्डी यज्ञ का समापन था। हजारों की संख्या में भक्तों ने इसमें भाग लिया और लाखों गाँव वालों ने भी प्रतिदिन अक्षत् के रूप में बर्तन, कम्बल और कपड़ों का प्रसाद, ग्रहण किया। पूरे विश्व से आए हुए विदेशी भक्तों ने भाषा न समझ में आते हुए भी , पूर्ण श्रद्धा के साथ पूजा में भाग लिया। 3 घण्टे तक शुरू में लगातार कीर्तनों की धुन पर स्वामी निरंजन, स्वामी सत्संगी के साथ, सब भक्तगण भी बेसुध होकर नाचते नाचते आनन्द विभोर हो उठते थे। पूरे समारोह का संचालन रिखिया पीठ के कन्याओं और बटुकों द्वारा सम्पन्न हुआ। गुरु और देवी माँ की बरसती हुई असीम अनुकम्पा को समस्त उपस्थित जनों ने अपनी ग्राह्य

क्षमता के अनुरूप अपनी झोली में समेटा। आखिर जिसका पात्र जितना बड़ा होगा, वह उतना ही तो एकत्र कर पाएगा।

आज जब मैं अपने जीवन के पिछले पन्ने पलट कर देखती हूँ तो खुद हैरान हो जाती हूँ। क्या सचमुच मैंने ही वो भयानक पीड़ा झेली थी ? क्या सचमुच मैं उस भयंकर दलदल से न केवल सुरक्षित अपितु और अधिक मजबूत हो कर बाहर निकल आई हूँ?

इतने ज्ञानी गुरुओं की अनुकम्पा सहज ही मेरे जीवन को ओतप्रोत कर रही है। कभी कभी सोचती हूँ, कि मैंने ऐसा तो कुछ भी अच्छा कर्म इस जन्म में नहीं किया, जिससे मुझे उनकी कृपा दृष्टि मिलती ! मेरी उस डूबती हुई नैया को अनके मित्रों, डॉक्टरों और ईश्वर के दूतों ने आनन्द के इस तट पर लाने में एक वृहद् भूमिका निभाई। डॉक्टरों के जवाब देने के बावजूद, मेरे पति ने तन, मन और धन से मेरी सेवा की। जीवन के उस भँवर में एक मजबूत साथी की तरह उन्होंने अपनी पूरी सामर्थ्य लगा कर मुझे न केवल बाहर खींचा अपितु मेरी भावनाओं की

कद्र करते हुए मेरी कई गल्तियों को सहज ही क्षमा भी किया। आज भी मेरे लेखन कार्य में, मुझे उनका पूरा सहयोग प्राप्त है।

मैं तहेदिल से परमगुरु स्वामी शिवानंद, स्वामी सत्यानंद, स्वामी निरंजन और स्वामी सत्संगी की आभारी हूँ। जिनके सत्संग और आध्यात्मिक निर्देशन ने मेरे व्यक्तित्व को निखारने, सजाने और सँवारने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। योग की शरण में आने से न केवल मेरा खोया हुआ आत्मविश्वास जागृत हुआ, अपितु मेरे अन्तर्निहित गुणों को एक नई दिशा मिली। मेरे अन्दर के छिपे हुए ईश्वरत्व का सहज ही प्रादुर्भाव हो रहा है। **परमहंस स्वामी निरजंनानंद सरस्वती ने कहा है कि, "योग का उद्देश्य समाधि नहीं है। रोग का ठीक होना तो योग की एक छोटी सी उपलब्धि है। योग का वास्तविक उद्देश्य है अपने जीवन को पूर्णता से जीना। अपने आप को जानना, पहचानना और अपने व्यक्तित्व को भरपूर निखारना ही योग की अन्तिम परिणति है।"** आज उनका यह कथन मेरे जीवन में एक हद तक सच हो रहा है।

स्वामी शिवानंद के अष्टांग योग के प्रथम तीन चरणों के अपनाने से ही मेरा जीवन धन्य हो गया है। मेरे जीवन में एक नए आयाम का जन्म हुआ है। सेवा, प्यार और दान ने मेरे व्यक्तित्व को निखारने में एक अहम् भूमिका निभाई है। और आज मैं 95 प्रतिशत स्वस्थ हूँ। चिन्ता, क्रोध और तनाव का दामन तो कहीं पीछे छूट गया है। यद्यपि कभी–कभी कुछ क्षण के लिए वे मुझे मिलने चले आते हैं; परन्तु पुनः अपनी जड़ें जमाने में सक्षम नहीं हैं। मुझे याद आता है कि 15 वर्ष पहले जब मैं ज्ञानदर्शन योगाश्रम में आई थी तो कमरदर्द के साथ–साथ मैं सिरदर्द से भी अक्सर परेशान रहती थी। डॉक्टरों ने मेरे सिरदर्द को माइग्रेन के रूप में उपचार करने की कोशिश की थी। परन्तु अनेक दवाईयाँ खाने के बावजूद वह टस से मस न हुआ था। योग के अभ्यास जैसे योगनिद्रा, अन्तर्मौन, गुंजन प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम और पवन मुक्तासन–I करते–करते, मेरा सिरदर्द स्वतः ही गायब हो गया। आज मैं उसको पूर्णतया भूल चूकी हूँ। अपने अनुभव से ही मुझे समझ आया कि जीवन में

ज्यादातर दुःखों का कारण तनाव, चिन्ता, और क्रोध ही है। यदि व्यक्ति योग के सरल अभ्यासों को मन लगाकर थोड़ा सा ध्यान भी करता है तो एक स्वस्थ जीवन के साथ–साथ अपने व्यक्तित्व को पूर्णता से जी सकता है।

सफलता के इस मुकाम पर पहुँचने के बाद, वृद्धावस्था के मोड़ पर,मुझे अपने तन और मन में एक नूतन स्फूर्ति का अनुभव नित प्रतिदिन होता है। अनेक बच्चों का भविष्य सँवारते हुए, उनमें दिव्य संस्कारो की नींव डालते हुए, मेरा जीवन उनके स्नेह से परिपूर्ण हो गया है। मेरा एक ही बेटा है जो आज अमेरिका में नौकरी कर रहा है। परन्तु इतने सारे बच्चों के साथ रहते हुए, उन्हें गणित और योग सिखाते हुए, मुझे उसकी कमी जरा भी नहीं अखरती। प्रत्येक बच्चा, मुझे बिल्कुल अपना ही लगता है। और जिस प्रकार मैंने उसे प्यार और मेहनत से पाला पोसा था, उसी प्रकार इन नन्हे कोमल मानवीय पौधों को भी मैं पूरी लगन और मेहनत से सींचती हूँ। ईश्वर के द्वारा दी गई इस महत्वपूर्ण सेवा ने मुझे एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर दिया है।

अब मेरे जीवन का केवल एक ही सपना है कि प्रभु मुझे इतनी शक्ति दे कि मैं अपनी आखिरी साँस तक "बहुजन हिताय और बहुजन सुखायः" के भाव से ये निष्काम सेवा करती रहूँ। परमहंस स्वामी निरंजन को मैंने अपना रोल मॉडल (आदर्श) चुना है। मैं जानती हूँ कि वो एक आसमान का तारा हैं और मैं एक धूल का कण हूँ, परन्तु मुझे विश्वास है कि उनकी कृपा से मैं उनका एक गुण तो शायद अपना ही पाऊँगी। स्वामी सत्संगी के व्यक्तित्व ने भी मुझे अन्तर्तम तक प्रभावित किया। उनके असीम स्नेह और प्यार ने मेरी सोच और मेरे व्यवहार को बदलने में एक अहम् भूमिका निभाई है। मेरा सपना है उन्हीं की तरह अनेकों पर अपना प्यार और स्नेह लुटाने का। अपने साथ–साथ इन नन्हीं कलियों को खिलाने का। और इनको पुष्पित, पल्लवित होते देख कर ईश्वर को शत्शत् धन्यवाद करने का। ऐसे गुरुओं के चरणों में मेरा शत् शत् प्रणाम्!

<u>उपसंहार</u> – आज इतनी कठिनाईयों से गुजरने के पश्चात् मेरे जीवन की धारा ही बदल गई है। इन कठिनाईयों ने

एक आग की भाँति मेरे जीवन को गला कर, तपा कर कुन्दन बना दिया है। छोटे–छोटे कष्टों की ओर तो अब मेरा ध्यान ही नहीं जाता। जीवन सुख दुःख का संगम है अपने अनुभव से मुझे अच्छी तरह समझ आ गया है। और प्रत्येक आने वाला दुःख मुझे शक्ति प्रदान करने में सक्षम है, यदि मैं अपनी सोच सकारात्मक रख पाती हूँ तो ! प्रत्येक क्षण को ईश्वर का दिव्य उपहार मान कर जीवन जीते हुए, मानो मेरा जीवन धन्य हो गया है। **<u>"जेहि विधि राखे राम, तेहि विधि रहिए।"</u>** ही मेरे जीवन का मूल मंत्र बन गया है। मेरी सोच 100 प्रतिशत सकारात्मक हो गई। मेरी सब दवाईयाँ छूट गई हैं। लोग हैरान हैं ! डॉक्टर हैरान हैं ! कभी–कभी बरसात या सर्दी में जोड़ों में हल्का दर्द होता है, परन्तु मैं उस तरफ ज्यादा ध्यान नहीं देती। अतः वह स्वतः ही चला जाता है। स्वयं को सारा दिन निष्काम सेवा (चाहे वो घर के काम हों अथवा लिखने पढ़ने के) में ही व्यस्त रखती हूँ। मन को 1 मिनट भी खाली छोड़ने से ये नए–नए सुझाव इच्छा और परेशानियों के रूप में देने लगता है। अतः मन को व्यस्त रखना

ही सुखी जीवन का रहस्य है, ये मैं अपने अनुभवों से समझ पा रही हूँ।

अमरोली एक सशक्त यौगिक क्रिया है। उसको जीवन में अपनाने से मेरे स्वास्थ्य सुधार में एक आश्चर्यजनक गति आ गई है। अपना जीवन अब मैंने निष्काम सेवा, प्यार, और दान में समर्पित कर दिया है। अब मैं इन सरल सूत्रों के द्वारा अनन्त शांति और प्रसन्नता प्राप्त करना चाहती हूँ; संसार में रहते हुए, जीवन को भरपूर जीते हुए ये कठिन अवश्य है, मैं जानती हूँ। परन्तु जीवन में सब अच्छी चीजों को प्राप्त करने के लिए मेहनत तो करनी ही पड़ती है। पहले कई लोग अक्सर मुझसे पूछते थे कि गुरु की शरण में जाने और स्वयं को उनके चरणों में समर्पित कर देने से, 'क्या मैं संन्यास ले लूँगी ?' परन्तु उन सब लोगों को मैं आज बता देना चाहती हूँ कि योग जागने का मार्ग है, भागने का नहीं। भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवद्गीता में अर्जुन को युद्ध करने का आदेश दिया था, छोड़ने का नहीं। और क्या जीवन एक कुरुक्षेत्र का संग्राम नहीं है ? हमारे अन्दर छिपे हुए

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार, क्या दुर्योधन और दुःशासन नहीं हैं ? निरन्तर इच्छाओं की अग्नि में जलते हुए, हम कहाँ सुखी रह पाते हैं ? जंगल जाने अथवा संन्यास ले कर गेरुआ पहनने से हम सुखी हो जाएगें, ये हमारा कपोल कल्पित भ्रम है। आज आवश्यकता है जागने की, न कि भागने की । अपना जीवन दिव्य बनाने की। एक दिव्य जीवन ही सुखी जीवन है। और यही परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद का दिव्य संदेश है।

दिव्य जीवन जीने के लिए मेरे कुछ सुझाव :–

1. दुःख, दाता का दूत है, जो तुम्हें उसके पास ले जाने आया है। दुःख में यह विचार बार बार दोहराने से एक असीम शान्ति का अनुभव होता है।
2. जीवन की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में सन्तोष रखना और बार–बार दोहराना कि समय का चक्र निरन्तर चल रहा है।
3. रोग, तनाव, चिन्ता और क्रोध को जन्म देता है। या यूँ कहा जाए कि तनाव, चिन्ता और क्रोध रोग की नीव

अवचेतन मन में डालते हैं। अतः आसन, प्राणायाम और ध्यान के सरल अभ्यासों को नियमित रूप से करते जाना, धैर्य और विश्वास के साथ।

4. नियमित दिनचर्या, सात्विक भोजन ही एक अच्छे स्वास्थ्य की नीव को सुदृढ़ करते हैं।
5. सेवा एक ईश्वरीय गुण है, उसको अपने जीवन का एक अनिवार्य अंग बनाना। सेवा के अवसर ढूँढना और उनको करते जाना।
6. अपने सीमित परिवार के दायरे से निकल कर, प्रत्येक जड़ चेतन को प्यार करना।
7. धन की उत्तम गति तो सात्विक दान में ही हैं, ये निरंतर याद रखना।
8. धर्म ग्रन्थों जैसे रामायण, गीता, भागवत् आदि का निरन्तर अध्ययन करना, मनन चिन्तन करना।
9. नियमित कीर्तन एक ऐसी दिव्य औषधि है जो व्यक्तित्व में आमूल चूल परिवर्तन ला सकती है।

10. टी.वी. से दूर रहने की कोशिश करना, यदि आप अपने व्यक्तित्व के अन्तर्निहित गुणों को जानना और पहचानना चाहते हैं।
11. **"आसन और प्राणायाम को यदि गिनती और श्वास की सजगता से किया जाता है तो उसका प्रभाव 100 गुना अधिक बढ़ जाता है।"**

    – परमहंस स्वामी निरजंनानंद सरस्वती
12. जिस किसी अंग में भी पीड़ा होने से अपना मन यदि वहाँ एकाग्र कर दिया जाए तो प्राण की शक्ति से स्वतः ही आराम मिलने लगता है।
13. परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने ईश्वर के नाम से प्रत्येक उपचार करने की विधि को नामोपैथी कहा है। अतः जिस किसी भी धर्म या गुरु में आपकी आस्था हो, उनके नाम का सतत् स्मरण करिए। असाध्य रोगों का निदान भी इस विधि से सम्भव है।
14. **"एक प्रशिक्षित मन लेजर बीम की तरह**

शक्तिशाली है।" – परमहंस स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती। ऐसे मन की शक्ति से असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है।

15. योग के द्वारा मन को सहज ही प्रशिक्षित किया जा सकता है।

16. भोजन में संयम ने मेरे रोग को दूर करनें में एक अहम् भूमिका निभाई, आलू, चावल, बैंगन, नींबू, इमली, कद्दू, भिण्डी और ड्रमस्टिक आदि कुछ ऐसी सब्जियाँ थीं, जिससे मेरी तकलीफ बढ़ जाती थी। मूँग की दाल ही आज भी मैं सरलता से हजम कर पाती हूँ। सभी खाद्य पदार्थ जिनमें परिरक्षक (Preservative) होते हैं मैंने पूर्णतया छोड़ दिए हैं। ब्रेड, जैम, बाजार की आइसक्रीम, मक्खन, कोल्ड ड्रिंक आदि से भी तकलीफ बढ़ती है। राजमा, चना, तले हुए खाद्यपदार्थ कठिनता से हज़म होते हैं। और

गैस उत्पन्न करते हैं जिससे तुरन्त जोड़ों मे दर्द हो जाता है। शुरू में संयम कठिन अवश्य प्रतीत होता है परन्तु धीरे–धीरे इच्छा शक्ति संयम से स्वयं दृढ़ होने लगती है। जब–जब मन कमजोर होता तो मैं स्वयं से पूछती थी – तुझे क्या चाहिए ? स्वास्थ्य या पहिया कुर्सी ? दुःख या प्रसन्नता ? स्वाधीनता या पराधीनता ?

सत्संग करते हुए, प्रभु के दिव्य नामों का कीर्तन करते हुए, व्यक्ति का अपने दिव्य स्वरूप से परिचय होता है। और तब चिन्ता, तनाव, क्रोध, लोभ और मोह की गाड़ी तो कहीं पीछे ही छूट जाती है। जब व्यक्ति का परिचय अपने अन्दर के उस दिव्य आनन्द के स्रोत से होता है तो बाहरी विषय भोगों की वासनाएँ स्वतः ही क्षीण होने लगती हैं। जीवन में गन्दी, बुरी चीजों का त्याग करना नहीं पड़ता, वह तो ज्ञान का पदार्पण होते ही स्वयं छूटने लगती हैं। असली सुख और आनन्द की एक झलक पाते ही इन्सान नकली सुख के सब साधनों की निरर्थकता समझ

जाता है।

सेवा, प्यार और दान करते–करते व्यक्ति की आन्तरिक शुद्धि होती है। तब प्रभु स्वयं आते हैं। ऐसे व्यक्ति को अपनी ऊर्जा कृपा से ओतप्रोत कर देते हैं। अपनी गोद में उठाते हैं, जमाने के दुःखों से बचाते हैं और अनन्त सुख और शांति प्राप्त करने के मार्ग का पथिक बनाते हैं। इस पथ पर हों भले ही काँटे अनेक, परन्तु प्रभु स्वयं उन काँटों को पथिक के पाँव से निकालते हैं। और उन जख्मों पर अपने दिव्य स्नेह का मलहम लगाते हैं। सतत् आनन्द ही है भाग्य ऐसे पथिक का। इस लोक में या परलोक में, मोक्ष ही है भाग्य ऐसे पथिक का। और ऐसे पथिक तो केवल और केवल सेवा के अवसर माँगते हैं। जितनी अधिक सेवा करते हैं, उतना ही प्रभु कृपा का प्रसाद पाते हैं। तो आओ, हम सब उस दिव्य राह के पथिक बनें जहाँ पग–पग पर प्रभु का साया है। वहाँ न माया है, न दुःख है और न विषाद है।

अपनी माँ के पूजनीय चरणों में – एक श्रद्धांजलि

आज जब मैं अपने जीवन की किताब के पन्ने पलटती हूँ तो देखती हूँ, समझ पाती हूँ कि मेरी माँ ने जो अपरोक्ष उपहार मुझे संस्कारों के रूप में दिए, उन्होंने मुझे सफलता दिलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मेरी माँ एक साधारण घरेलू स्त्री थीं; उस समय में यद्यपि स्त्रियों की शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता था, फिर भी वह लाहौर से प्रभाकर करने के बाद अंग्रेजी भी पढ़ना जानती थीं। उनके पिता जी एक वकील थे अतः घर में पढ़ने लिखने पर बहुत जोर दिया जाता था। उनके जीवन का केवल एक सपना था कि उनके सब बच्चे ऊँची से ऊँची शिक्षा ग्रहण करें। उन्होंने बेटों और बेटियों में कभी कोई भेद भाव नहीं किया। हम बहनों को भी भाईयों के बराबर ही माता पिता का स्नेह और प्यार मिला।

वह अंधविश्वास से कोसों दूर थीं, अतः घर में होने वाली

अनेक पूजाओं और व्रतों में उन्होंने हम पर कभी कोई बन्धन नहीं लगाए। पूजा के लिए नहाना अथवा नहीं, इस बात पर उन्होंने कभी कोई अधिक जोर नहीं दिया। रामायण पढ़ना, रामायण की प्रश्नावलि से पहेलियाँ ढूँढते–ढूँढते, मुझे अनेक पद सहज ही याद हो गये थे। जब मैं बहुत छोटी थी, मुझे धुंधली सी याद है उनके साथ प्रत्येक मंगलवार को मंदिर के कीर्तनों में जाने की । वहाँ जाना मुझे बहुत अच्छा लगता था। गोरखपुर से प्रकाशित पत्रिका "कल्याण" की वह आजीवन सदस्य थीं। उनको किताबें पढ़ने का बहुत शौक था। घर में खाना बनाने और अन्य कार्यों के लिए नौकर होने के कारण, उनको स्वाध्याय का समय भी मिल जाता था। बचपन से ही मैं भी नियतिम रूप से "कल्याण" पढ़ती थी। उसके अन्त में एक लेख "पढ़ो, समझो और करो" मुझे बहुत प्रिय था। इस लेख में दया, दान और करुणा की सच्ची शिक्षाओं जो सरल कहानियों के रूप में थीं, मैंने सहज ही अपनाया। कल्याण के विशेषांक जिनमें अनेक देवी देवताओं की तस्वीरें होती थीं मुझे बहुत पसन्द आते थे।

श्री कृष्ण का विशेषांक मुझे बहुत अधिक पसन्द था और उसको मैंने अनेकों बार पढ़ा होगा। उसकी एक कहानी आज भी मुझे याद है जो पाठकों के लिए लिखना चाहूँगी। – एक गरीब लड़का अपने गाँव से बहुत दूर पाठशाला में पढ़ने जाता था। रास्ते में घना जंगल था, वापसी में अन्धेरा होने के कारण उसको बहुत डर लगता था। माँ घरों में झाड़ू, बर्तन का काम करती थी। एक दिन शाम को रोते–रोते उसने अपनी माँ से कहा, "माँ मुझे एक नौकर रख दे, जो शाम को मुझे जंगल पार करा दे।" माँ एक गरीब नौकरानी थी क्या करती, खुद भी रोने लगी। उसने कृष्ण भगवान की तस्वीर की तरफ इशारा करके कहा, "बेटा और तो दुनिया में हमारा कोई नहीं है, पर तेरा बड़ा भाई मोहन है। वह एक ग्वाला है। तुझे जब डर लगता है तो उसे पुकार लिया कर, वह आ कर तुझे जंगल पार करा देगा।" अगले दिन जब उसे डर लगा तो उसने 'मोहन' को पुकारा। जब थोड़ी देर तक भगवान नहीं आए तो जोर जोर से रोने लगा और पुकारने लगा "मोहन तुम कहाँ हो, जल्दी आ जाओ। मुझे बहुत डर लग रहा है।"

भगवान अपने सच्चे भक्तों की पुकार कहाँ ठुकरा सकते हैं। अतः दौड़े चले आए और उसे जंगल पार करवा दिया। अब तो नित्य प्रतिदिन भगवान के साथ वह खेलते कूदते जंगल पार करने लगा। एक दिन गुरुजी ने पूजा के लिए सब बच्चों को दूध लाने के लिए कहा। अब ये लड़का भी अपनी माँ को शाम को दूध के लिए तंग करने लगा। माँ बेचारी गरीब, क्या करती ? दूध कहाँ से लाती ? बोली "तेरे भाई मोहन के पास हजारों गाय है, कल तू उसी से माँग लेना।" बालक बहुत खुश हुआ और अगले दिन उसके माँगने पर मोहन ने एक छोटे लोटे में उसको दूध ला दिया।

ज़िन्दगी में पहली बार स्कूल में कुछ ले जा सका, इससे वह बहुत उत्तेजित था; बार बार गुरु जी को अपने लोटे का दूध खीर में डालने का आग्रह करता। गुरुजी अन्य कार्यो में व्यस्त होने के कारण खीज गये। एक बड़े बच्चे से बोले 'अरे भाई पहले इसके लोटे का दूध खीर में डाल दो। अब उस लोटे का दूध तो अक्षय

था, भगवान ने जो दिया था। दूध से बर्तन भर गया, पर दूध समाप्त नहीं हुआ। बड़े बच्चे हैरान हो गए, और दौड़ कर गुरुजी को बुला कर लाए। गुरु जी भी आश्चर्य चकित हो उठे। उन्होंने उस बालक से पूछा, "क्यों रे, ये दूध का लोटा तू कहाँ से लाया ?" बालक ने सारी कहानी बता दी। गुरु जी भी शाम को उसके साथ जंगल गए, मोहन के दर्शन करने के लिए। बालक ने सरलता से मोहन को बुलाया, वह तो आ गया, परन्तु गुरु जी को नहीं दिखा। गुरु जी ने कहा। "अरे मुझे तो कुछ दिखाई नहीं दे रहा।" अब बालक मोहन से बोला "मोहन तुम ये क्या खेल, खेल रहे हो ?" तब भगवान ने कहा "गुरु जी का हृदय शुद्ध नहीं है और उनका विश्वास भी कच्चा है, अतः सामने होते हुए भी मैं उनको दिखाई नहीं दे रहा।"

इस कहानी पर मैंने पूर्ण विश्वास किया और डर के समय भगवान श्री कृष्ण को पुकारा। ईमानदारी से कहूँ तो भगवान रूप में तो प्रकट नहीं हुए, परन्तु मेरा डर भाग गया। मेरी बहादुरी

और निडरता की दृढ़ नीव इसी कहानी ने डाली। आज भी डर लगने के समय मैं भगवान को ही पुकारती हूँ और उनकी शक्ति का अपने अन्तर्तम में सहज ही अनुभव कर पाती हूँ। प्रभु की असीम अनुकम्पा से मुझे परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द के ज्ञानयज्ञ में एक बूँद बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह सेवा मेरे लिए एक दिव्य आनन्द की स्रोत है। मेरी स्वर्गीय माँ के इस दिव्य उपहार ने आज अनेक वर्षों पश्चात् भी मेरे जीवन को कृत कृत्य कर दिया है।

मेरे पिता – एक स्मरणीय व्यक्तित्व

मेरे पिता का जन्म उत्तर भारत के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। मेरे पड़दादा जी ने एक बहुत बड़े व्यापारिक संस्थान की स्थापना की। दान धर्म करना उनको बहुत प्रिय था। अम्बाला छावनी में आज भी उनके द्वारा खोला गया स्त्रियों का दातव्य

अस्पताल केवल 10 रू. फीस पर चल रहा है। लड़को के लिए एक स्कूल खोला। हरिद्वार में एक धर्मशाला भी बनवाई जो आज भी गंगा के तट पर उनकी सहज ही याद दिलाती है। आज से लगभग 60–70 साल पहले एक बहुत बड़ी आटा, मैदा, सूजी बनाने की स्टीम रोलर फ्लोर मिल और एक बर्फ खाना आदि कुछ उल्लेखनीय व्यापार के केन्द्र उन्होंने स्थापित किये। नौकरों चाकरों में पलने के बावजूद भी मेरे पिता का स्वभाव एकदम सरल था। उन्होंने अपनी शिक्षा अधिकतर या तो स्वयं की अथवा घर पर आने वाले शिक्षकों ने उनको पढ़ाया। अपने परिवार के कानूनी सलाहकार बनने का उत्तरदायित्व उन्होंने बहुत वर्षों तक ईमानदारी से निभाया।

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी उन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। प्रत्येक बड़े छोटे यहाँ तक कि नौकरों को भी वह आदर की दृष्टि से देखते और 'राम राम' कह कर उसका अभिवादन करते। बाप दादा की इतनी बड़ी जयदाद का किराया इकट्ठा करना, केस लड़ना भी उनका एक कार्य था।

प्रत्येक किरायेदार से ईमानदारी से किराया लेना, उनके घरों और दुकानों की मरम्मत करवाना एक दुष्कर कार्य था। बहुत से लोग उनको धोखा भी देते। समय का चक्र कुछ ऐसा चला कि उनकी सरलता और ईमानदारी का न केवल दूसरों ने अपितु अपने परिवार वालों ने भी नाज़ायज फायदा उठाया। परन्तु मैंने कभी भी उनको किसी एक की भी निन्दा करते नहीं सुना। माँ तो कभी–कभी खीज भी जातीं, परन्तु फिर भी उनके मुँह से एक भी शब्द न निकलता। प्रभु की इच्छा मानकर वह सहज ही सब कुछ स्वीकार कर लेते। आज कभी–कभी सोचती हूँ, हम छोटी–छोटी बात से घबरा जाते हैं, परेशान हो जाते हैं, कितना समय पर चर्चा, परनिन्दा में व्यतीत करके व्यर्थ ही गँवा देते हैं।

वह सदा सच बोलते थे। उनके मन, वाणी और व्यवहार में कभी भी कोई फर्क नहीं रहता। इसी वजह से वह अनेक मित्र नहीं बना पाए; क्योंकि लोगों को खुश करने के लिए मीठी बात बनाना उनको आता ही नहीं था। चापलूसी करना तो बहुत दूर की बात अपने मतलब के लिए भी वह किसी को खुश करना नहीं

जानते थे।

खाने पीने का यद्यपि उनको शौक था, परन्तु यदि डॉक्टर उनको किसी चीज के लिए मना करते, तो तुरन्त छोड़ देते थे। मधुमेह के कारण मीठा पसन्द होते हुए भी उन्होंने कई वर्षों से मीठा छोड़ दिया था। और कभी बहुत मन करता तो सीमा के भीतर ही थोड़ा सा लेते। अतः संयम से भोजन लेने के कारण उनको स्वास्थ्य की कभी भी अधिक समस्या नहीं हुई।

वृद्धावस्था में भी उनकी दिनचर्या एकदम नियमित थी। समय पर उठना, समय से 4–5 अखबार पढ़ना, समय से भोजन करना और समय पर सोना। इच्छाशक्ति भी उनमें भरपूर थी। 83 वर्ष की उम्र में जब उनकी कूल्हे की हड्डी टूट गई, तो बड़ा आपरेशन करवाना पड़ा। कुछ महीने पश्चात् ही वह स्वयं वॉकर, फिर छड़ी से चलने लगे। एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने न केवल लाठी छोड़ दी, अपितु सीढ़ी चढ़ना, उतरना भी शुरू कर दिया था। उम्र बढ़ने से भी उनकी इच्छाशक्ति कम नहीं हुई थी।

उनकी इच्छाशक्ति हम सब भाई बहनों के लिए सदैव एक प्रेरणा स्रोत रही है।

अपने जीवन में सन्तोष ही उनका सबसे बड़ा धन था। इसलिए उनको नींद न आना आदि कोई भी समस्या वृद्धावस्था में नहीं हुई। अपने प्रति की गई छोटी से छोटी सेवा के लिए वह सबको तुरन्त ही "भगवान भला करे।" करके आशीर्वाद के रूप में धन्यवाद दे देते। जब अनजाने में, मैंने अपनी कामवाली को ये धन्यवाद दिया तो उसे बहुत पसन्द आया और वह बहुत खुश हुई। ईश्वर को धन्यवाद देने के साथ–साथ, करने वाले को भी आशीर्वाद देते हुए प्रत्येक पल ईश्वर का स्मरण सहज ही हो जाता है। "राम, राम" कहकर सम्बोधित करना, गरीब, अमीर दोनों को ही उन्हें बहुत पसन्द था। यद्यपि वह न तो बहुत अधिक पूजा पाठ ही करते या मन्दिर जाते, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति में समानता का व्यवहार करते हुए, सतत् ईश्वर का दर्शन ही तो करते थे।

न तो उनको किसी से ईर्ष्या थी और न ही मोह। परिवार में रहते हुए, सब का पालन पोषण करते हुए भी वह स्वयं को अपने में ही व्यस्त रखते थे। कभी– कभी मैं सोचती हूँ, पर चिन्तन ही नहीं करते होगें, तभी तो निन्दा, चुगली भी नहीं करते थे। हम 9 भाई बहनो को उन्होंने, जैसे हम हैं, वैसे ही स्वीकारा। कभी कोई तुलना नहीं की, कभी कोई पक्षपात नहीं। उस जमाने में लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था; परन्तु मेरी स्वर्गीय बहन जो आज लगभग 65 वर्ष की होती, उन्होंने भी संस्कृत एम.ए. विश्वविद्यालय से की थी और कई वर्ष स्कूल में प्रिंसिपल के पद पर कार्यरत रही थीं।

93 वर्ष की उम्र पूरी करने के पश्चात् बिना किसी कष्ट के उन्होंने सहज ही अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया। आज वो जीवित नहीं हैं, परन्तु उनकी सरलता, ईमानदारी और इच्छाशक्ति हम सब के लिए एक मार्ग दर्शक के रूप में जीवित है। क्या कलियुग में भोगों के पीछे भागते हुए लोग ऐसे सन्तोष

की कल्पना भी कर सकते हैं ? अपनी गलती के लिए दूसरों पर दोषारोपण करना कितना सहज होता है। अपने अहंकार का पोषण हम परनिन्दा करके सहज ही तो करते हैं। परन्तु क्या ऐसा जीवन हमें शांति और सुख दे सकता है ?

वह बहुत अधिक न्यायप्रिय थे। हाथ में शक्ति होते हुए भी उन्होंने कभी किसी किरायेदार पर अत्याचार नहीं किया। मंहगाई बढ़ने के बावजूद गरीब किरायेदार का किराया नहीं बढ़ाते थे। आज भी अनेक व्यक्ति उनको याद करके सहज ही द्रवित हो जाते हैं। दया, करुणा, और क्षमा उनके स्वभाव का एक सहज अंग थे। हम सब बच्चों की पढ़ाई, लिखाई और शादी तक की जिम्मेदारी उन्होंने बखूबी निभाई। कभी कोई चिन्ता नहीं, तनाव नहीं। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास ही उनका आधार था। उनको याद करके मेरा भी विश्वास दिन प्रतिदिन ईश्वर में दृढ़ होता जा रहा है। कभी कभी सोचती हूँ कि उनके विश्वास का यदि एक अंश भी मैं अपने जीवन में अपना पाई तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा।

सम्पूर्ण नारी जाति के लिए मेरा सन्देश

माँ ने मुझे ज्ञान का उपहार दिया जिसने मेरा जीवन सँवार दिया।

पिता की सहमति ने, पिता के सहयोग से मुझे अपने पैरों पर खड़े होने का सम्बल मिला।

आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर मेरा आत्मविश्वास बढ़ा।

आत्मविश्वास जिससे मैंने जाना स्वयं को, पहचाना अपने निहित गुणों को।

बन सकी मैं एक पूर्ण नारी, जिसका समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

समाज में रहते हुए, घर परिवार को संभालते हुए, अनेक बच्चों के भविष्य का निर्माण मैं कर पा रही।

अपने भीतर के किसी कोने में गहन तृप्ति का अनुभव मैं कर पा

रही।

कभी–कभी सोचती हूँ, यदि मैं पढ़ी न होती तो आज किसी काबिल बनी न होती।

रह जाती मैं केवल खाना बनाने और घर संभालने के लायक।

घुटती ही रहती मैं अपने अन्दर ही अन्दर अपने अन्दर के गुणों को लेकर।

आज नारी को पढ़ना ही होगा। अपने सीमित दायरे से बाहर निकलना ही होगा।

अपने निर्णय खुद करने ही होंगे। अपने फैसलों से सीखते हुए, आगे बढ़ना ही होगा।

शिक्षा रूपी धन को अपनी सम्पत्ति बनाना ही होगा, अपने जीवन का भार स्वयं उठाना ही होगा।

गर बनना है उसे एक पूर्ण व्यक्तित्व तो योग की शरण में आकर अपने आप को समझना ही होगा।

अपने अन्दर के निहित गुणों को उभारते हुए, अपने व्यक्तित्व को

सजाना सँवारना ही होगा।

घर गृहस्थी में रहते हुए, अपने कर्तव्य निभाते हुए, अपनी एक अलग पहचान बनानी ही होगी।

जब वह जानेगी कि उसके अन्दर भी एक दिव्य आत्मा है तभी होगा उसका जीवन सार्थक।

तभी वह जी पाएगी अपने जीवन को पूर्णता से और उस अनन्त शांति और प्रसन्नता को अनुभव कर पाएगी जिस पर उसका सहज ही अधिकार है।

अपने को हेय न समझते हुए, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिला कर, समाज में एक महत्वपूर्ण योगदान दे पाएगी।

बनेगी वह एक ऐसी मशाल जो न केवल अपने घर परिवार को अपितु संपूर्ण विश्व को चमकाएगी।

नारी पुरुष से कई पक्षों पर बेहतर है, ये दिखाते हुए भारत को पुनः विश्व सम्राट बनाएगी।

मेरा सपना

मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आई ? मैं खुद नहीं जानती।

हे गुरुदेव, इतनी शक्ति मुझे देना कि तुम्हारी शिक्षाओं को जन जन तक पहुँचा सकूँ।

यदि एक भी मानव को उसके ईश्वरत्व से जोड़ सकूँ, तो अपने जीवन को धन्य समझ सकूँ।।

अपने जीवन के द्वारा औरों को प्रेरित कर सकूँ।

तुम्हारा चरित्र ही बने मेरा पथ प्रदर्शक।

इस राह पर चलते चलते तुम्हारी ऊर्जा ही बने मेरा अवलम्बन।

तुम ही हो मेरे पावर हाऊस। तुम ही हो मेरे लाईट हाऊस।।

संसार के इस समुद्र में मेरी नैया के तुम ही हो एक मात्र

खिवैया।

मेरी ही तरह औरों के भी तुम बनो खिवैया।

यही है मेरी अभिलाषा, यही है मेरी एक मात्र आकांक्षा।।

ज्ञान से हर मानव जगे। स्वयं को जाने और पहचाने।।

इस मानव जीवन के मूल्य को समझे। योग को अपने जीवन का एक अंग बनाए।।

इसी धरा पर स्वर्ग है। स्वयं देखे और अनुभव करे।।

विश्व में हो स्थापना राम राज्य की। मानव मानव में हो खेती सेवा और प्यार की।।

तभी ईश्वर का सृष्टि रचने का सपना पूरा होगा।

जब उसका हर बच्चा सुखी और केवल सुखी होगा।।

●●